REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 8 | MAY - 2023

भूमंडलीकरण के प्रभाव में भारतीय राष्ट्र-राज्य का बदलता स्वरूप एवं सामाजिक न्याय

डॉ. दिनेश कुमार
सहायक प्राचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, अनुग्रह नारायण सिं हकॉलेज, बाढ़।

शोध सारांशः

वर्तमान समय में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय राष्ट्र-राज्य की लोककल्याणकारी भूमिका को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूपों में प्रभावित किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान निर्माताओं ने देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्थिति को देखते हुए संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत सामाजिक न्याय के लक्ष्य को उपबंधित किया है। इस लक्ष्य को साकार करने की दिशा में राज्य ने लोककल्याणकारी नीतियों, कार्यक्रमों और सेवाओं का व्यापक जाल भी बिछाया है। परन्तु भूमण्डलीकरण की प्रक्रियाओं और इससे जुड़ी उदारवादी एवं नवउदारवादी नीतियों ने राज्य की भूमिकाओं का रूख लोककल्याण से बाजार अर्थव्यवस्था की ओर मोड़ दिया हैं। इससे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक न्याय का लक्ष्य, मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के लक्ष्य में बदल गया है। भारत जैसे विकासशील एवं पिछड़े देश में जहाँ बड़ें पैमाने पर दरिद्रता, बीमारी, कुपोषण, आश्रयहीन्ता व बेरोजगारी जैसे विकराल समस्याएँ मौजूद हैं, राज्य द्वारा कल्याणकारी भूमिकाओं से पलायन करना खतरनाक होगा। भूमण्डलीकरण की प्रक्रियाओं ने भारतीय संविधान में स्थापित सामाजिक न्याय के आदर्श और शासन की वर्तमान नीतियों के मध्य गंभीर अन्तर्विरोध की स्थिति उत्पन्न कर दी है। यह भारत जैसे विकासशील लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के लिए अनुकूल नहीं हैं।

प्रस्तावनाः

भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसने विश्व समाज को एक 'वैश्विक ग्राम' में परिवर्तित कर दिया है। इसी के परिणामस्वरूप वर्तमान समय में यह चर्चा एवं अध्ययन का विषय बन गया है। यह प्रक्रिया उदारीकरण एवं निजीकरण के साथ घनिष्ठता के साथ जुड़ा हुआ है। भूमंडलीकरण की अवधारणा को 1980 के दशक में विशेष लोकप्रियता मिली। यह अवधारणा उदारीकरण और निजीकरण के तार्किक परिणाम को व्यक्त करती है। भूमंडलीकरण के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधि की कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए अर्थव्यवस्था को विश्व के किसी भी क्षेत्र की आर्थिक गतिविधि के साथ जोड़ने की छूट दी जाती

है, जिससे उत्पादन, विपणन और सेवाओं का जाल बिछाकर किसी भी कार्य को विश्व के किसी भी कोने में संपन्न किया जा सके। इससे कॉरपोरेट वर्ग अपनी इच्छानुसार वहीं करोबार करता है, जहां उसकी लागत में कमी आय; उसकी गुणवत्ता उन्नत की जा सके; उससे मिलने वाले लाभ की अधिकतम प्राप्ति हो, वहां उसे संपन्न करने की अनुमति और सुविधाएं प्राप्त हो।

उदारीकरण वह नीति या कारवाई है जिसके अन्तर्गत आर्थिक गतिविधि की कार्यकुशलता और मिलने वाले लाभ की अधिकतम वृद्धि के लिए उस पर से सरकारी प्रतिबंध और नियंत्रण हटा दिए जाते हैं या उनमें ढ़ील दे दी जाती है, ताकि बाजार की शक्तियों को बेरोकटोक अग्रसर किया जाए। इसके साथ यह विश्वास जुड़ा है कि मांग और पूर्ति तथा मुक्त प्रतिस्पर्द्धा के नियम व्यापारियों के लिए निजी लाभ और कामगारों के लिए प्रोत्साहनों का आकर्षण तथा आर्थिक गतिविधि में कार्य कुशलता बढ़ाने के सर्वोत्तम साधन है। इस नीति के अन्तर्गत व्यापारियों के कल्याण के लिए राज्य के उत्तरदायित्व को कम करने की कोशिश की जाती है। उदारीकरण के समर्थक मानते हैं कि राज्य की कल्याणकारी गतिविधियों को बढ़ाने से व्यक्ति स्वयं परिश्रम से विमुख हो जाते हैं और राज्य के संसाधनों पर जरूरत से अधिक बोझ पड़ता है। अतः सब तरह के लोगों को परिश्रम की ओर प्रेरित करने के लिए राज्य की कल्याणकारी सेवाओं को सीमित करना जरूरी है। निजीकरण वह नीति है जिसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के किसी महत्वपूर्ण हिस्से को अर्थात किन्हीं विशेष वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन या वितरण को सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र के स्वामित्व या नियंत्रण से हटा कर निजी या गैर-सरकारी क्षेत्र को उसका स्वामित्व या नियंत्रण प्राप्त करने की अनुमति दी जाती है, ताकि उसकी कार्य कुशलता बढ़ाई जा सके; उससे होने वाले वित्तीय हानि को रोका जा सके तथा उससे अधिकमत लाभ प्राप्त किया जा सके।

दूसरी तरफ समाजिक न्याय की अवधारणा आर्थिक क्षेत्र में राज्य द्वारा अधिकतम लोककल्याणकारी भूमिका निभाने का समर्थन करती है। सामाजिक न्याय का सामान्य अर्थ कि सामाजिक जीवन में सभी मनुष्यों की गरिमा स्वीकार की जाए, स्त्री-पुरूष, गोरे-काले, जाति-धर्म आदि के आधार पर किसी व्यक्ति को बड़ा-छोटा या ऊँचा-नीचा नहीं माना जाए। शिक्षा व उन्नति के अवसर सब लोगों को समान रूप से उपलब्ध हों। सभी मनुष्य के नाते मिल-जुल कर कला-साहित्य, संस्कृति व तकनीक साधनों का उपयोग कर सकें। 'सामाजिक न्याय' का विचार निर्बल व निर्धन पक्ष को विशेष सहायता व संरक्षण दिए जाने की वकालत करता है। विस्तृत अर्थ में 'सामाजिक न्याय' का अर्थ है कि संगठित सामाजिक जीवन में जो भी लाभ प्राप्त होते हैं, वे कुछ चुनिन्दा लोगों के हाथों में सिमट कर न रह जाएं, बल्कि आम आदमी को, विशेषकर निर्बल व निर्धन वर्गों को उनमें समुचित हिस्सा मिले, ताकि वे खुशहाल व सम्मानित जीवन निश्चिंत होकर बसर कर सके। यह राज्य द्वारा सकारात्मक भूमिका की मांग करता है। सामाजिक न्याय की व्यवस्था की खातिर राज्य लोककल्याणकारी नीतियों व कार्यक्रमों का अवलंबन करता है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक सेवाओं का व्यापक जाल बिछा दिया जाता है। राज्य कई तरह के कायदे-कानून बनाकर लोगों व संस्थाओं की गतिविधियों को नियंत्रित करता है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय; प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता; व्यक्ति के गरिमा और राष्ट्र की एकता व अखण्डता को बढ़ाने वाली बन्धुता जैसे पावन शब्द-बन्धों का प्रयोग किया गया है। ये सभी विचार लोकतंत्र के बुनियादि मूल्य भी हैं। कोई भी समाज एक श्रृंखला के समान होता है। जैसे कोई श्रृंखला अपनी सबसे कमजोर कड़ियों से अधिक मजबूत नहीं हो सकती, उसी प्रकार कोई समाज भी अपनी सबसे कमजोर कड़ियों, अर्थात दीन-हीन, निर्बल-निर्धन, अशिक्षित, अस्वस्थ एवं वंचित-उपेक्षित लोगों से अधिक मजबूत नहीं हो सकता। भले ही उसकी सैन्य क्षमता

अतिमारक हो, देश में बिखरे हुए समृद्धि के टापुओं से विकास की चकाचौंध नजर आती हो। साथ ही प्रस्तावना में 42वें संशोधन द्वारा 'समाजवाद' शब्द को भी जोड़ा गया, जिससे राज्य का उद्देश्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

भारतीय संविधान के भाग चार के अन्तर्गत नीति-निर्देशक तत्वों के द्वारा भी सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लक्ष्य को सामने रखा गया है। संविधान का यह भाग केवल नैतिक उपदेश नहीं है, बल्कि इन्हें कार्य रूप देने का राज्य के द्वारा लगातार प्रयास किया गया है। पंचवर्षीय योजनाएं, 20 सूत्री कार्यक्रम, प्रिविपर्स की समाप्ति, बैंको का राष्ट्रीयकरण, जवाहर रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना, जनवितरण प्रणाली, पंचायती राज, मनरेगा, मध्याह्न भोजन योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, उज्वला योजना, शिक्षा का अधिकार योजना, खाद्य सुरक्षा कानून, सूचना का अधिकार, जनधन-खाता, आयुष्मान योजना इत्यादि इसके उदाहरण है। स्थूल रूप से, भारतीय संविधान में राज्य के लिए जो सामाजिक-आर्थिक आदर्श है, उसका स्वरूप लोककल्याणकारी है। राज्य इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में लगातार प्रयत्नशील भी रहा है। परन्तु 1991 में भारत के तात्कालीन वित्त मंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने देश को आर्थिक संकट से उबारने के लिए जिस नयी आर्थिक नीति की शुरूआत/घोषणा की उससे राज्य की नीतियों का रूख, लोककल्याणकारी अर्थव्यवस्था से मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की ओर मोड़ दिया गया। इसके साथ ही आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की ऐसी प्रक्रिया शुरू हुई जो अनवरत जारी है। लेकिन इस प्रक्रिया ने सामाजिक-आर्थिक न्याय के लक्ष्य को मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के लक्ष्य में बदल दिया है। इससे जहां राज्य की कल्याणकारी भूमिका में कमी आयी है, वहीं भारतीय संविधान के आदर्शों और शासन की मौजूदा नीतियों के बीच एक गंभीर अन्तर्विरोध पैदा हो गया है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 38, जो नीति निर्देशक सिद्धांतों का मर्म है, कहता है "राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करे, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, प्रभावी रूप से स्थापना और संरक्षण कर लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा" अनुच्छेद 39 के अनुसार राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से सभी पुरूषों और स्त्रियों को जीविका के प्रयाप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो, समुदाय की भौतिक सम्पदा का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो, जिसमें सामुहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो, आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार से चले कि धन और उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो, पुरूष व स्त्रियों कि लिए समान कार्य के लिए समान वेतन हो, उनके स्वास्थ्य और शक्ति, बच्चों के सुकुमारावस्था का दुरूपयोग न हो, आर्थिक अवस्था से विवश होकर लोगों को ऐसे रोजगार में न जाना पड़े, जो उनकी आयु व शक्ति के अनुकूल न हो और बच्चों व युवाओं को शोषण से बचाया जा सके। अनुच्छेद 41 में उपबंध किया गया है कि राज्य अपने आर्थिक सामर्थ एवं विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने, शिक्षा पाने, बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्ता की दशा में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा। भारतीय संविधान के 42वें संशोधन के माध्यम से इसकी प्रस्तावना में 'समाजवादी' शब्द जोड़कर राज्य की कल्याणकारी भूमिका को और भी मुखर बनाने का प्रयास किया गया है। इसके विपरीत 1991 से भारत में शुरू की गयी नव-उदारवादी नीतियाँ मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था का समर्थन करती है। परन्तु मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था और सामाजवादी अर्थव्यवस्था साथ-साथ नहीं चल सकती है। इस प्रकार भारतीय संविधान के सामाजिक, आर्थिक और राजनीति न्याय के आदर्श और शासन की नव-उदारवादी नीतियों के बीच एक गंभीर अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गया है। लोककल्याणकारी भारतीय राज्य-व्यवस्था पर मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था का स्पष्ट प्रभाव देख जा रहा है।

ग्लोबल हंगर इंडेक्स 2021 की ताजा रैंकिंग के अनुसार 116 देशों की सूची में भारत 101वें स्थान पर है, जबकि 2020 में 94वें नम्बर पर थी (अमर उजाला, 15 अक्टूबर, 2021)। किसी देश का ग्लोबल हंगर इंडेक्स का स्कोर ज्यादा होने का मतलब है कि उस देश में गरीबी, भूखमरी व कुपोषण की समस्या गंभीर है। राष्ट्रीय पविारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण-4 के आँकड़े के अनुसार देश में कुपोषण की दर घटी है, लेकिन न्यूनतम आमदनी वर्ग वाले परिवारों में आज भी आधे से ज्यादा बच्चे (51 प्रतिशत) अविकसित और सामान्य से कम वनज (49 प्रतिशत) है। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में इस समय 33 लाख से अधिक बच्चे कुपोषित है। इसमें आधे से अधिक बच्चे यानि 17.7 लाख बच्चे गंभीर रूप से कुपोषित है(एनएफएचएस, 14 अक्टुबर, 2021)। भूख से मौतों और कुनोषण के लिए अभिशाप ओडिसा का कालाहांडी, मलकान गिरी हो, छत्तीसगढ़ का वस्तर और दांतेवाड़ा या फिर बिहार का मुजफ्फरपुर जिला, झारखंड, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र, देश के अधिकतर राज्यों में ऐसे क्षेत्र हैं, जहां भूख, कुपोषण, महामारी सार्वजनिक उपेक्षा का प्रायः निर्धन और आदिवासी-जनजातीय लोग शिकार हो रहे हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 के अनुसार राज्य अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को उंचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्त्तव्यों में मानेगा। स्पष्ट है कि कुपोषण से लड़ने और नागरिकों को पोषाहार स्तर प्रदान करने में सरकारें विफल हो रही हैं।

साहित्य समीक्षाः

किसी भी प्रकार के शोध कार्य में साहित्यावलोकन का महत्वपूर्ण स्थान होता है। शोध कार्य को वैज्ञानिक, व्यावहारिक एवं समाजोपयोगी बनाने हेतु इसका गहन अध्ययन आवश्यक है। शोध के दौरान जिन साहित्यों का अध्ययन किया गया है, वे निम्नलिखित हैं-

सुमित्रा शर्मा, ने अपनी रचना 'वैश्वीकरण, सामाजिक गतिशीलता एवं अनुसूचित जातियां', 2020, रावत प्रकाशन में राजस्थान के जयपुर एवं सीकर जिला में अनुसूचित जाति के महिलाओं उभरती सामाजिक गतिशीलता पर फोकस किया गया है। इसके साथ ही वैश्वीकरण के सामान्य अवधारणा, अनुसूचित जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं दोनों जिला का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है।

उषा श्रीवास्तव ने अपनी लेख 'ग्लोबलाइजेशन मिडिया, कल्चर एण्ड सोसायटी' 2015 मे समाज मिडिया और संस्कृति पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव का उल्लेख किया है। उनका कहना है कि भारत में भूमण्डलीकरण से विशेषतः मध्य एवं उच्च मध्यमवर्ग अधिक लाभान्वित हुआ है। जिससे अत्यधिक मात्रा में गरीबी का स्तर कम हुआ है।

नरेश भार्गव, की रचना 'वैश्वीकरणः समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य' 2014, रावत पब्लिशन के अन्तर्गत वैश्वीकरण का अध्ययन समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में किया गया है। यह पुस्तक भूमंडलीकरण की सैद्धान्तिक, अवधारणात्मक एवं व्यवहारिक विवेचन करती है। लेखक ने इस पुस्तक में भारतीय समाज व्यवस्था पर वैश्वीकरण के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव का विवेचन किया है। इस पुस्तक की खास बात यह है कि इसमें वैश्वीकरण के व्यवहारिक पक्ष को ज्यादा गंभीरता से लिया गया है।

बबीता अग्रवाल एण्ड अनील अग्रवाल ने अपनी रचना, 'ग्लोबलाइजेशन एण्ड इण्यिन सोसाइटी' 2013 में वैश्वीकरण के प्रभाव को इंगित करते हुए लिखा है कि सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार के अभाव में विश्व का स्वरूप बहुत ही छोटा था। परन्तु वैश्वीकरण के प्रभाव ने औद्योगिक व विकसित देशों के साथ-साथ बहुत से विकासशील देशों में भी दिन-प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति

के जीवन को प्रभावित किया है। व्यवसायिक दृष्टिकोण से बहुत बड़ी कम्पनी और बहुत छोटी कम्पनी विदेशी बाजार पर निर्भर है।

आर. एस. बावा एण्ड मनजीत सिंह ने 'ग्लोबलाइजेशन डेवपमेंट एण्ड इंडिया-इश्यू एण्ड पॉलिसी' 2012 में उन्होंने लिखा है कि वर्तमान समय में ज्ञान एवं कौशल आर्थिक विकास का सबसे शक्तिशाली हथियार है। इसके साथ ही उन्होंने महसूस किया कि आज जो लोग गरीब है उसके पीछे सबसे बड़ा कारण कमजोर आर्थिक नीति है।

बाम्बी टर्नर ने 'ग्लोबलाइजेशन एण्ड कल्चरल चेन्ज' 2011 में कहा है कि भूमण्डलीकरण से आर्थिक अवसरों, मानवाधिकारों एवं खाद्य पदार्थों, परिधनों, फैशन, सबारी, कॉस्मेटिक का विकास हुआ हैं। वस्तुतः वैश्वीकरण ने बाजार में पूँजी का प्रवाह कर युवाओं, बाजार, विभिन्न धर्मों, समुदायों, लिंग एवं वर्गों को अपनी ओर आकर्षित किया हैं।

डॉ. कृष्ण चन्द्र प्रधान ने अपनी रचना 'वोमेन एण्ड सोशल चेन्ज' 2009 में लिखा है कि भूमण्डलीकरण ने भारत में महिलाओं के शैक्षणिक एवं रोजगार की स्थिति में वृद्धि की है। इसके साथ ही महिलाओं के राजनीतिक प्रभाव में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। भूमण्डलीकरण ने महिलाओं के प्रति पुरूषों की जो नाकारात्मक मानसिकता है, उसमें बदलाव लाया है।

सुमित राय, ने अपनी रचना 'ग्लोबलाइजेशन आइ.सी.टी. एण्ड डेवलपिंग नेशन्स चौलेन्ज्स इन द इनफॉर्मेशन एज' 2008 में लिखा है कि ग्लोबलाइजेशन ने सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी को बढ़ाया हैं, जिससे कार्यों में दक्षता एवं उत्पादन में वृद्धि हुई हैं। विशेषकर भारत में नई प्रौद्योगिकी के संचार ने विकास के अन्यत्र मार्गों का प्रसार किया हैं। इसलिए भारत के युवाओं के लिए यह एक चुनौती पूर्ण कार्य है कि कैसे इस नए तकनीक का प्रयोग करके राष्ट्र निर्माण में अपनी सकारात्मक भूमिका का निर्वहन कर सके।

अभय कुमार दुबे, भारत का भूमंडलीकरण, 2007, वाणी प्रकाशन, के अन्तर्गत भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण का अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन विकासशील समाज अध्ययन पीठ के आँकड़े पर आधारित है। इस पुस्तक के अन्तर्गत भूमंडलीकरण के अध्ययन को एक नई दिशा की ओर मोड़ा गया है। इसमें वैश्वीकरण को आर्थि एवं तकनीकी बहस से निकालकर लोकतांत्रिक कसौटी पर केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है।

राम मोहन वर्मा ने अपनी पुस्तक 'डेवलपमेन्ट एण्ड चौलेन्जेज ऑफ ग्लोबलाइजेशन' 2006 में विकासशील देशों में भूमण्डलीकरण के प्रभावों का अध्ययन किया है। इसके अन्तर्गत इन्होनें भूमण्डलीकरण के द्वारा होने वाले तकनीकों के स्थानान्तरण के लाभ और हानि का विवेचन किया है, जिसमें तालिम, धन, तकनीक एवं सूचना प्रद्यौगिकी इत्यादि शामिल है।

शोध का उद्देश्यः

प्रस्तावित शोध प्रस्ताव "भूमण्डलीकरण के युग में राष्ट्र-राज्य का बदलता स्वरूप एवं सामाजिक न्यायः भारतीय राजनीति के सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" है, जिनके अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया गया हैं:

- प्रस्तावित शोध के अन्तर्गत भारत में भूमण्डलीकरण और उससे जुड़ी नव-उदारवादी नीतियाँ- उदारीकरण एवं निजीकरण का अध्ययन अपेक्षित है।
- प्रस्तुत शोध का उद्देश्य भारतीय संविधान द्वारा घोषित सामाजवादी गाँधीवादी आर्दशों के अनुरूप सामाजिक न्याय के लक्ष्यों, शासन द्वारा चलाए जा रहे लोककल्याणकारी कार्यक्रमों एवं बनाए जा रहे नीतियों का अध्ययन करना।
- भूमंडलीकरण के प्रभाव में क्या राष्ट्र-राज्य की शक्तियों में कमी आयी है?

- भूमण्डलीकरण की नीति और प्रक्रियाओं ने क्या भारत जैसे विकासशील देश के सामाजिक न्याय के लक्ष्य और कल्याणकारी योजनाओं के प्रति शासन की प्रतिबद्धता को कम कर दिया है?
- क्या नवउदारवाद की बुनियादी मान्यताएं सामाजिक न्याय की अवधारणा के साथ तालमेल नहीं बैठा सकती है?
- सामाजिक न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था की स्थापना के मार्ग में भूमण्डलीकरण की नीतियाँ क्या बाधक बन रही हैं? इन्हीं प्रश्नों की पड़ताल करना इस शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य है।

शोध परिकल्पनाः

- भारत ने वर्ष 1991 में नव-उदारीकरण की नीति को अपनाया, जिसके पश्चात राज्य की लोककल्याणकारी भूमिका में लगातार कमी आयी है।
- भारत एक समाजवादी राज्य है, ऐसे में शासन के द्वारा लोगों को दरिद्रता, गरीबी, बेरोजगारी, भूखमरी, बीमारी, कुपोषण के कुचक्र से बचाने के लिए प्रतिबद्ध होना पड़ेगा, अन्यथा देश के लिए विनाशकारी साबित होगा।
- भूमण्डलीकरण और सामाजिक न्याय का विचार एक-दूसरे की विपरीत अवधारणा है, ऐसे में दोनों के बीच तालमेल बैठाकर शासन के द्वारा सामाजिक न्याय के लक्ष्य को पाना बहुत ही कठिन है

अध्ययन की पद्धतिः

प्रस्तुत शोध की अध्ययन पद्धति ऐतिहासिक, व्यावहारिक एवं विश्लेषणात्मक है। इसके अतिरिक्त शोध कार्य की आवश्यकता अनुरूप तुलनात्मक पद्धति का भी सहारा लिया गया है। प्रस्तुत शोध की अध्ययन पद्धति में विश्लेषण हेतु इतिहास से आधारभूत सामग्री प्राप्त किया गया है। यह शोध प्रबन्ध द्वितीयक स्रोत पर आधारित है। इस शोध कार्य हेतु भारत सरकार के विभिन्न संबंधित विभागों के अभिलेखों, राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पुस्तकालयों के पाण्डुलिपियों, इन्टरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध, सामाचार पत्र-पत्रिकाएँ एवं अन्य प्रासंगिक सामग्रियों का अध्ययन किया गया है।

सन्दर्भः

1. दास, डी० के०, " फाइनेन्शियल ग्लोबलाइजेशनः पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट" इकोनॉमिक अफेयर्स, **2011 31(2),** पृ० **63-67**।
2. श्रीनिवास, के०एम०, "ग्लोगलाइजेशन ऑफ बिजनेस एण्ड द थर्ड वर्ल्डः चैलेन्ज ऑफ एक्सपैन्डिंग द माइन्डसेट" जनरल ऑफ मैनेजमेन्ट डेवलनमेन्ट, **1995, 14(3),** पृ० **26-49**।
3. हर्टुन्गी, आर०, "कुड डेवलपिंग कन्ट्रीज टेक द बेनिफिट ऑफ ग्लोगलाइजेशन?" इन्टरनेशनल जनरल ऑफ सोशल इकोनॉमिक्स, **2006, 33(11),** पृ० **728-743**।
4. प्रीब्ले, जे० एफ०, "टूवार्ड ए फ्रेमवर्क फॉर अचिविंग ए ससटेनेबल ग्लोबलाइजेशन" बिजनेस एण्ड सोसाएटी रिव्यू, **2010, 115(3),** पृ० **329-366**।
5. रूगमैन, ए०, हॉडगेट्ट, आर०, "द इन्ड ऑफ ग्लोबल स्ट्राटेजी" यूरोपियन मैनेजमेन्ट जनरल, **2001, 19(4),** पृ० **333-343**।
6. सोशलिस्ट पार्टी, सिद्धान्त और कार्यक्रम, जनवरी **1956,** पृष्ठ **-17** ।

7. एन०ए० पालकीवाल, आवर कॉन्स्टीट्यूशन: डीफेस्ड एंड डीफायड, पृष्ठ -214 ।
8. हरी चांद, द अमेण्डिंग प्रौसेस इन द इंडिया कंस्टीट्यूशन, पृष्ठ 17-18 ।
9. थॉमस फ्राइडमैन, ग्लोबलाइजेशन द लेक्सस एण्ड ओलिवट्री, 1999, पृष्ठ-76 ।
10. वी०डी० नागर (सम्पा०), सामाजिक न्याय के सजग प्रहरी, नई दिल्ली, सेगमेन्ट ।
11. दलीप एस. स्वामी, द वर्ल्ड बैंक एण्ड ग्लोबलाइजेशन ऑफ इण्डियन इकॉनौमी, पब्लिक इंटरेस्ट रिसर्च ग्रुप, दिल्ली, 1994 पृष्ठ 3 ।
12. क्लार्क, थॉमस और पिटेलिस, क्रिस्टोस (एड्स.) (1995) 'निजीकरण की राजनीतिक अर्थव्यवस्था' लंदन और न्यूयॉर्कः रूटलेज, ISBN 0-415-12705-X
13. मेगिन्सन और नेटर, राज्य से लेकर बाजार तकः निजीकरण पर प्रायोगिक अध्ययन के एक सर्वेक्षण, आर्थिक साहित्य 39(2) का पत्रिका, जून 2001, 321-89 ।
14. वॉन वीज़सैकर, अर्नस्ट, ओरान यंग और मैथियस फिंगर (संपादक): निजीकरण करने के लिए सीमा. अर्थस्कैन, लंदन 2005 ISBN 1-84407-177-4 ।
15. बेल, जर्मा (2006), "द कौयेनिंग ऑफ 'प्रैवेटाइज़ेशन' एंड जर्मनिज़ नैशनल सोशलिस्ट पार्टी", जर्नल ऑफ इकोनॅमिक पर्सपेक्टिव 20(3), 187-194 ।